Gyanvividha, Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026 : PP-334-336

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-6.125
Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026
Page No.- 334-336
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com
Author's :
डॉ. षामिला षाजी
सहायक प्राध्यापक, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्टयम.

Corresponding Author :
डॉ. षामिला षाजी
सहायक प्राध्यापक, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्टयम.

समकालीन आदिवासी कविता का पारिस्थितिक स्वर

साहित्य का एक पारिस्थितिक दर्शन भी है। इस पर्यावरणवादी दर्शन को 'इको-फिलॉसफी' भी कहा जाता है। इको-फिलॉसफी का आरम्भ एवं विकास 1970 के बाद हुआ। इसकी मुख्य शाखाएँ चार हैं- गहन पारिस्थितिवाद, सामाजिक-पारिस्थितिवाद, पारिस्थितिक-मार्क्सवाद और पारिस्थितिक स्त्रीवाद। इन चार शाखाओं के ज़रिए पारिस्थितिक दर्शन विकास प्राप्त कर रहा है। इसके अतिरिक्त साहित्य की एक हरित आलोचना भी है, जिसे 'इको-क्रिटिसिज़्म' कहा जाता है। इसमें साहित्य की पर्यावरणोन्मुखी आलोचना की जाती है।

आदिवासी समाज प्रकृति की सबसे निकट का समाज है। वे प्रकृति के उपासक होते हैं। वे हमेशा प्रकृति की गोद में रहना चाहते हैं। उनके हर व्यवहार में पर्यावरण संरक्षण की भावना निहित है। उन्होंने प्रकृति के अनुकूल जीवनयापन करना सीखा है। लेकिन आज आदिवासी विस्थापन के कारण वे प्रकृति से अलग होने लगी हैं। प्रकृति के साथ हो रहे शोषण आदिवासी अस्तित्व को खतरे में डाला है। समकालीन आदिवासी कविता अपने पर्यावरण, अपने प्राकृतिक वातावरण एवं निवास के प्रति सजग है। वह अपनी जल-जंगल-ज़मीन की लडाई में मनुष्य और प्रकृति के सहयोगी साहचर्य का सार्वभौमिक सन्देश धारण किए हुए है।

समकालीन आदिवासी कवियों ने अपनी कविता में पर्यावरण के लिए संघर्षरत आदिवासी समाज का अंकन किया है। पारिस्थितिकी और आर्थिक दृष्टि से आदिवासियों को वनों से अलग नहीं किया जा सकता है। इनका जीवन जंगलों और जंगली जीवों के साथ घनिष्टता से जुड़ा हुआ है। ये जंगल उनका घर और आजीविका का साधन है। निर्मला पुतुल की कविता 'बूढ़ी पृथ्वी का दुःख में' आज के भौतिक विकास से मोहग्रस्त होकर प्रकृति के प्रति असंवेदनशील बने मनुष्य में परिस्थिति की सजगता जागृत करने के लिए धरती की पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखती हैं कि-"क्या तुमने कभी सुना है / सपनों में चमकती कुल्हाडियों के भय से / पेड़ों की चीत्कार?.../ सुना है कभी / रात के सन्नाटे में अँधेरे से मुँह ढाँप / किस कदर रोती है नदियाँ ?... / खून की उल्टियाँ करते / देखा है कभी हवा को, अपने घर के पिछवाड़े ? / अगर नहीं तो क्षमा करना ! / मुझे तुम्हारे आदमी होने पर संदेह है !! "[1] कवयित्री की पंक्तियों में प्रकृति को शोषण करनेवाले मनुष्य के प्रति

आक्रोश प्रकट हुआ है। कविता में कवयित्री कहती है-प्रकृति के अहितकर बदलाव अभी तक समझने को मानव असमर्थ है, तो तुम्हारी आदमी होने पर संदेह है। इतना शोषण और अत्याचार सहकर भी कभी शिकायत न करनेवाली बूढ़ी पृथ्वी का दुःख कवयित्री समझती है।

आदिवासी कवियों को प्रकृति के प्रति गहरा जुड़ा है। वंदना टेटे ऐसे ही कवयित्री है जिन्होंने बचपन में से प्रकृति का नैसर्गिक सौन्दर्य देखा था। इसलिए उनकी कविता में प्रकृति महत्वपूर्ण तत्व है। वर्त्तमान में मानव के अनियंत्रित दोहन के कारण प्राकृतिक चीज़ें घटती जा रही है। सूखी नदियाँ, खेतों में खुदी माइंस देखकर कवयित्री उदास है। अपनी इस उदासी को व्यक्त करती हुई लिखती हैं कि- "और जंगलों से गुज़रती हवा / गुनगुनाना गुनगुनाना भूल गई है / ... और कविताओं की नदियों में / डूबने की इच्छा / बन्दूक की बटों / और बूटों के नीचे / कराहती रहती है, दिन रात ।"[2] प्रकृति के सभी चीज़ों का संतुलन बदल गया है। इस बात का बयान है कविता की पंक्तियों में।

आदिवासी कवयित्री आलोका कुजूर की 'बातें चिड़ियों' नामक कविता में अपना घोंसला नष्ट होते चिड़िया के माध्यम से शहरीकरण के दौर में नष्ट होनेवाली परिस्थिति का अंकन किया है। जैसे- "सुकून है नहीं था / बहार है नहीं था / घोंसला है नहीं था / पहाड़ टूटे, गाँव टूटा / परिवार टूटे, टूटा मेरा दिल..../ बैठी चिड़िया सोच रही बिजली की तार पर / हो रही चिड़ियों की बातों / अपना घर, अपना नहीं है आज।"[3] जंगल उजाड़ने से जंगल के सभी जीव-जंतु भी ख़त्म होते जा रहे है। जंगल जीवों के समान जंगल पर निर्भीक रहे आदिवासी भी अस्तित्वहीन बन रहे हैं। जंगल पर होनेवाले बाह्य हस्तक्षेपों से आदिवासी जीवन संकट में पड़ गया है।

'जब पेड़ उखड़ता है' जसिंता केरकेट्टा की महत्वपूर्ण कविता है। यह कविता 'प्रेम में पेड़ होना' संग्रह की एक कविता है। संग्रह की कविताएँ केवल दो व्यक्तियों के बीच होते प्रेम की कविताएँ नहीं है, ये कविताएँ नहीं है, ये कविताएँ उस प्रेम पर केन्द्रित हैं जिससे समग्र सृष्टि को संबल मिलता है। कवयित्री इस कविता संग्रह की कविताओं में आदिवासी जन की पीड़ा और प्रकृति के आर्तनाद को भी जगह दी है। जैसे-" एक पेड़ के उखड़ने से / पेड़ एक बार ही उखड़ता है / पर उससे जुड़ा आदमी / दो बार उखड़ता है / एक बार अपनी ज़मीन से / और दूसरी बार /अपनों की स्मृतियों के स्पर्श से ।"[4] इस कविता द्वारा कवयित्री आदिवासी और प्रकृति के बीच के प्रेम को अभिव्यक्ति देती हैं। आदिवासियों के लिए पेड़ माँ की तरह लगते हैं। पेड़ की पत्तियों पर चूमने तो अपनी माँ की हथेलियों पर चूमने-सा है। जंगल के हाथ पकड़कर ही आदिवासी पुरखे बड़े हुए हैं। ये जंगल आदिवासी पुरखों की स्मृतियों और स्पर्शों को बचाकर रखा है। इसलिए जंगल उखाड़ना आदिवासियों के अस्तित्व उखाड़ने के समान है। इस कविता में पारिस्थितिक शोषण करनेवाले बाहरी लोगों के खिलाफ कवयित्री का प्रतिरोध स्पष्ट है।

प्रकृति पर हो रहे मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरुप पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण ये सब मानवीय गतिविधियों के कारण होता है। प्रदूषण हर प्राणी के लिए खतरनाक है। आज हमारे पास शुद्ध हवा और पीने के लिए शुद्ध पानी नहीं है। पर्यावरण प्रदूषण की बढती गति पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ देती है। 'आज का जंगल' कविता में सरिता सिंह बड़ाईक ने फैलते प्रदूषण के जाल, मिटते जंगल, ख़त्म होती वनौषधियाँ, खत्म होते जानवरों का तस्वीर इस प्रकार खींचा है कि- "नहीं है अब वैसा जंगल / खड़कती है जूतों की आवाज़ सूखी पत्तियों पर / छाया है आतंक का साम्राज्य चाहू ओर / बताया था जिसे ध्वन्त्वरी और चरक ने / आंवल, बहोड़ा, हरड के पेड़ पौधे / देते थे जीवन मानव को / नहीं है अब वैसा जंगल / वीरान होते, उजड़ते जंगल, कटते पेड़ / प्रदूषण का जाल फैला / बादल उड़ा, उड़ गई बारिश भी / देखकर सोचती, उदास होता मेरा मन।"[5]

प्रकृति के इस असंतुलन के लिए हर इंसान ज़िम्मेदार है। बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण किसी देश विशेष का नहीं, पूरे विश्व की समस्या है और यह केवल आदिवासी अस्तित्व की समस्या मात्र नहीं है, बल्कि हर मानव की समस्या है। बढ़ते प्रदूषण के कारण तापमान में वृद्धी, रेगिस्तानों का विस्तार, अतिवृष्टि व अनावृष्टि आदि समस्याओं के कारण मानव जीवन संकट में है। बढ़ते प्रदूषण के दौर मानव की स्थिति को कवयित्री ग्रेस कुजूर इस प्रकार लिखती हैं कि-" एक बूँद पानी के लिए / तड़प-तड़प जाएगी / हमारी पीढ़ियाँ .../ इसलिए मैं सच कहती हूँ / हे समय के पहरेदारो / तुमने अवश्य सुना होगा / एक वृक्ष की जगह / लगाओं दूसरा वृक्ष ।"[6] पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ने के कारण मानव स्वास्थ्य बिगड़ा है। छोटा-

छोटा बच्चा भी बीमारियों की चपेट में है। मानव के साथ अन्य जीव कैसे जलीय प्रजातियाँ, पौधे और वन्यजीव भी खतरे में है। इसलिए हम एक साथ लड़कर पर्यावरण संरक्षण करना अवश्यक है।

आदिवासी कविता में पारिस्थितिक नियमों को अधिक महत्त्व दिया गया है। क्योंकि आदिवासी जीवन प्रणाली प्राकृतिक नियमों पर आधारित है। मनुष्य के समान प्राकृतिक सत्ताओं का भी अपना मूल्य और अस्तित्व है। इसलिए प्रकृति से मानव को बुनियादी ज़रूरतों से ज़्यादा उपयोग करने का अधिकार नहीं है। इसी दर्शन को लेकर आदिम लोग रहता है। वे पारिस्थितिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन का विरोध करता है।

विकास के नाम पर प्रकृति और आदिवासियों का होता शोषण आदिवासी कविताओं में प्रमुख रूप से देखने को मिलता है। जो आदिवासी जल, जंगल और ज़मीन को अपना सब कुछ मानते थे उन्हें वहाँ से बेदखल कर दिया गया। समकालीन आदिवासी कवि अनुज लुगुन अपने काव्य संकलन 'अघोषित उलगुलान' की कई कविताओं में आदिवासी जीवन और प्रकृति के बीच का संबंध, विकास के नाम पर हो रहे पर्यावरण शोषण आदि को चित्रित किया है। अनुज लुगुन लिखते हैं-"लड़ रहे हैं आदिवासी / अघोषित उलगुलान में / कट रहे हैं वृक्ष / माफियाओं की कुल्हाड़ी से और / बढ़ रहे हैं कंक्रीटों के जंगल / दांडू जाए तो कहाँ जाए / कटते जंगल में / या बढ़ते जंगल में ।"[7] कवि कहता है कि आदिवासी अपने अस्तित्व, जल-जंगल-ज़मीन और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए 'अघोषित उलगुलान' (संघर्ष) लड़ रहे हैं। दूसरी ओर, वन-माफियाओं की कुल्हाड़ियों से निरंतर वृक्षों की कटाई हो रही है और उनकी जगह कंक्रीट के जंगल अर्थात शहर, भवन और औद्योगिक संरचनाएँ बढती जा रही हैं। जंगलों के नष्ट होने से जैव-विविधता और प्राकृतिक संतुलन खतरे में पड़ रहे हैं। आदिवासी लोग प्राकृतिक जंगलों के विनाश और कंक्रीट के कृत्रिम जंगलों के विस्तार के बीच फंसा गया है।

मानव के अनियंत्रित हस्तक्षेप से वन क्षेत्र घटता जा रहा है। इसलिए वन-जीवों के अस्तित्व खतरे में है। कवयित्री निर्मला पुतुल ने 'बाघ' कविता में इसकी अभिव्यक्ति की है-"बाघ इन दिनों खबरों की सूर्खियों में है / चर्चा है कि उनकी संख्या कम होती जा रही है / अब जंगल के काटने से / बाघ कम होते जा रहे हैं...।"[8] बाघ को मानव उसकी त्वचा के लिए उपयोग करता है। इसका नाख़ून भी बाज़ार में मूल्यवान है। बाघों और जंगली जानवरों के संरक्षण हेतु कई प्रावधान कागज़ में है। फिर भी हाथी, हिरण, बाघ आदि जानवरों का शिकार होता है। जंगल जानवरों के लिए भी असुरक्षित होते तो आदिवासियों की हालत क्या होगा ? यह सोचने की बात है।

समकालीन आदिवासी कवियों ने अपनी कविता में आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष के साथ पर्यावरण संरक्षण की चिंता भी व्यक्त किया है। वे प्रकृति के अंधाधुंध दोहन का विरोध करते हैं। आदिवासी कविता का परिस्थ्तिक स्वर प्रकृति, जल, जंगल एवं ज़मीन के प्रति गहरे लगाव तथा नकी रक्षा की चेतना को अभिव्यक्त करता है। यह कविता केवल पर्यावरणीय संकट का चित्रण नहीं करती, बल्कि विकास के नाम पर हो रहे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और आदिवासी विस्थापन का भी प्रतिरोध करती है। आदिवासी कवियों के लिए प्रकृति जीवन, संस्कृति एवं अस्मिता का आधार है। इसलिए उनकी कविताएँ पर्यावरण संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन तथा मानव और प्रकृति के सह-अस्तित्व का सन्देश देती हैं। इसप्रकार आदिवासी कविता का पारिस्थितिक स्वर समकालीन पर्यावरणीय विमर्श को नई दृष्टि और संवेदनशीलता प्रदान करता है।

सन्दर्भ सूची :

1. निर्मला पुतुल, 'नगाड़े की तरह बजते शब्द', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012 पृ. सं.-31-32.
2. सं. वंदना टेटे, 'कवि मन जनी मन', राधाकृष्ण पेपरबैक्स, , दिल्ली, 2019, पृ. सं.-241.
3. आलोका कुज़ूर, 'नए हस्ताक्षर', अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. सं.-72.
4. जसिंता केरकेट्टा, 'प्रेम में पेड़ होना', राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2024 पृ. सं.-38.
5. हरिराम मीणा, 'समकालीन आदिवासी कविता', पृ. सं.-82.
6. ग्रेस कुज़ूर, 'एक और जनी शिकार', अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2020, पृ. सं.-113-114.
7. अनुज लुगुन, 'अघोषित उलगुलान', राजकमल प्रकाशन, पृ. सं.-19.
8. निर्मला पुतुल, 'बाघ कविता', अरावली उद्घोष, सितम्बर 2008, पर.सं.-42.